अध्यात्म ज्ञान एवं चिन्तन संस्था
(SOCIETY FOR ADHYATMA STUDIES)

17, सिविल लाइन्स, कमिश्नर ऑफिस के सामने, मुरादाबाद – 244001
मो0 9412241221

ब्रह्म ज्ञान विचार गोष्ठी – 38

29.05.2011

"श्रीमद् भगवद् गीता"
चतुर्थ अध्याय
"ज्ञानकर्मसन्यास योग"

निवेदक

डॉ0 यू0 के0 शाह	रविन्द्र नाथ कत्याल	सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
शाह नर्सिंग होम,	अमर बसेरा,	17, सिविल लाइन्स,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद	सिविल लाइन्स, मुरादाबाद	मुरादाबाद
फोन नं0 9359716440	फोन नं0 9837041945	फोन नं0 9412241221

श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय – 4
"ज्ञानकर्मसन्यास योग"

श्रीभगवानुवाच–
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहम् अव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुः ईक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

श्रीभगवान ने कहा–
मैने इस अविनाशी योग को कल्प के प्रारम्भ में सूर्य से कहा था और सूर्य ने मनु से और मनु ने इक्ष्वाकु से कहा था।

एवं परम्पराप्राप्तं इममं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।

इस प्रकार परम्परा से इस योग को राज–ऋषियों ने जाना। परन्तु, हे अर्जुन! यह योग बहुत काल से इस लोक में नष्ट हो गया है।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतत् उत्तमम्।।

अब यह पुरा0त0न योग मैने तुमसे कहा है क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखा हो और यह योग बहुत उत्तम और रहस्यपूर्ण है।

अर्जुन उवाच–
अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतत् विजानीयां त्वम् आदौ प्रोक्तवानिति।।

अर्जुन ने कहा–
आपका जन्म तो अभी हुआ है जबकि सूर्य का जन्म बहुत पुराना है इसलिए मै यह कैसे मान लूं कि आपने कभी पहले इस योग को सूर्य से कहा था।

श्रीभगवानुवाच–
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

श्रीभगवान ने कहा–
हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे अनेकों बार जन्म हो चुके हैं परन्तु तुम उन सबको नहीं जानते जबकि मै सबको जानता हूं।

अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वाम् अधिष्ठाय संभवामि आत्ममायया।।

यद्यपि मै अविनाशी, अजन्मा और सब प्राणियों का ईश्वर हूं फिर भी मै अपनी प्रकृति को आधीन करके अपनी माया से जन्म लेता हूं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

हे अर्जुन! जब–जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब ही मैं अपने रुप को प्रकट करता हूं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दुष्टों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग–युग में प्रकट होता हूं।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्तितत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

हे अर्जुन! मेरा इस प्रकार दिव्य जन्म लेना और कर्म करना जो व्यक्ति सही प्रकार जान लेता है उसका शरीर के त्यागने के पश्चात पुनर्जन्म नहीं होता बल्कि वह मुझमें ही समा जाता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावम् आगताः।।

राग, भय और क्रोध रहित होकर तथा मेरी ओर मन बनाकर मेरी शरण में आये हुये बहुत से ज्ञानी व्यक्ति मुझमें लीन हो चुके हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

हे अर्जुन! जो जिस प्रकार मेरे मार्ग पर चलते हैं मै उन्हें उसी प्रकार प्राप्त होता हूं। इस रहस्य को जानकर बुद्धिमान मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग पर ही चलते हैं।

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।

जो मनुष्य कर्मों के फल को चाहते हुये देवताओं की पूजा करते हैं उनकी कर्मो से उत्पन्न साधना भी शीघ्र ही सिद्ध होती है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धि अकर्तारमव्ययम्।।

गुण और कर्मों के विभाग से चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) मेरे द्वारा रचे गये हैं। उनका कर्ता भी मुझ अविनाशी और अकर्ता को ही जानो।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।

कर्मफल में मेरी चाहना नही है और मैं कर्मों से बंधता भी नही हूं। जो मुझे इस प्रकार जानता है वह भी कर्मों से नहीं बंधता है।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।

पहले भी मोक्ष चाहने वाले पुरुषों द्वारा यही जानकर कर्म किये गये हैं। इसलिये तुम भी पूर्वजों जैसे ही कर्म को करो।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।

क्या करना है और क्या नहीं करना है इस विषय मे बुद्धिमान पुरुष भी भ्रमित हो जाते हैं। अतः मै तुम्हे वह कर्म बताऊंगा जिसको जानकर तुम अशुभ कर्मों से छुटकारा पा जाओगे।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।

कर्म भी जानना चाहिये और विकर्म भी जानना चाहिये तथा अकर्म भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति अत्यन्त गहन (रहस्यपूर्ण) है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न कर्मकृत्।।

जो व्यक्ति कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म को देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, योगी है और सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।

जिसके सम्पूर्ण कार्य कामनाओं और संकल्पों से रहित हैं उस ज्ञान रुपी अग्नि द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले व्यक्ति को ज्ञानी जन भी पण्डित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासंग नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।।

जो व्यक्ति कर्मफल की अभिलाषा को छोड़कर तथा सांसारिक आश्रय से रहित होता हुआ सदा सन्तुष्ट है वह कर्मों में लगा हुआ भी कोई कर्म नहीं करता है।

निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्न आप्नोति किल्बिषम्।।

जिसने अन्तःकरण को जीत लिया है तथा सम्पूर्ण भोगों की सामग्री को जिसने त्याग दिया है, ऐसा कामना रहित व्यक्ति केवल शरीर सम्बन्धी कर्म को करता हुआ पाप को प्राप्त नही होता।

यदृच्छा लाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धौ असिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

जो स्वयं ही जो कुछ प्राप्त हो जाये उसमें ही सन्तुष्ट रहने वाला है और हर्ष, शोक आदि द्वन्दों से बाहर निकल गया है तथा ईर्ष्या से रहित है एवम् सिद्धि और असिद्धि में एक समान भाव वाला है वह व्यक्ति कर्मों को करते हुये भी उनसे बंधता नही है।

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञाय आचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।

जो व्यक्ति आसक्ति से रहित होकर ज्ञान में स्थित हुये चित्त सहित यज्ञ के लिये आचरण करता है उस मुक्त पुरुष के सम्पूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

जो यह जानता है कि यज्ञ में जो अर्पण किया जा रहा है वह भी ब्रह्म है और हवन का द्रव्य भी ब्रह्म है और ब्रह्म रुप अग्नि में ही ब्रह्म रुप कर्ता द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म है ऐसे ब्रह्म रुप कर्म में लगे हुये व्यक्ति को ब्रह्म ही प्राप्त होता है।

दैवम् ऐवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नौ अपरे यज्ञं यज्ञेनैव उपजुह्वति।।

कुछ योगी पुरुष देव–यज्ञ (देवताओं के पूजन रुप यज्ञ) करते हैं और कुछ ब्रह्माग्नि (ब्रह्म रुप अग्नि) में यज्ञ करते हैं।

श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि अन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।

कुछ अन्य योगी जन श्रोत्र आदि इन्द्रियों के संयम रुपी अग्नि में यज्ञ करते हैं अर्थात इन्द्रियों को विषयों से रोककर अपने वश में कर लेते हैं। और कुछ अन्य योगी जन शब्द आदि विषयों को इन्द्रिय रुप अग्नि में हवन करते हैं अर्थात राग–द्वेष आदि विषयों को ग्रहण करते हुये भी भस्म कर देते हैं (उनमें लिप्त नहीं होते)।

सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।।

कुछ योगी जन सम्पूर्ण इन्द्रियों के कार्यों को तथा प्राणों के कार्यों को ज्ञान से प्रकाशित हुई आत्म संयम रुपी योग की अग्नि में हवन करते हैं।

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञा योगयज्ञाः तथापरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।

कुछ योगी द्रव्य–यज्ञ करते हैं और कुछ तप रुपी यज्ञ करते हैं और कुछ अष्टांग योग रुपी यज्ञ करते हैं और कुछ अहिंसा आदि व्रतों से स्वाध्याय और ज्ञान रुपी यज्ञ करते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।

कुछ योगी अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं तथा कुछ प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं और कुछ प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वे अप्येते यज्ञविदो यज्ञ क्षपित कल्मषाः।।

कुछ नियमित आहार करने वाले योगी प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं।
ऐसे सब यज्ञों को जानने वाले योगीजन यज्ञों द्वारा पापों का नाश करते हैं।

यज्ञशिष्ट अमृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्ति अयज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।

हे अर्जुन! यज्ञ के फल स्वरुप मिलने वाले ज्ञान रुपी अमृत को भोगने वाले योगी जन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं। यज्ञ रहित व्यक्ति को यह लोक भी प्राप्त नहीं है तब फिर परलोक कैसे प्राप्त होगा।

एवं बहुविधा यज्ञा विता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वान् एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।।

ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेदो में बताये गये हैं। यह सब कर्म से उत्पन्न होते हैं अर्थात शरीर, मन और इन्द्रियों की क्रियाओं द्वारा ही किये जाते हैं। इस तत्व को इस प्रकार जानकर संसार बंधन से मुक्त हो जाओ।

श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

हे अर्जुन! धन–यज्ञ से ज्ञान–यज्ञ श्रेष्ठ है। सम्पूर्ण कर्मो की पराकाष्ठा ज्ञान में ही होती है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।।

तत्व को जानने वाले ज्ञानी व्यक्तियों से दण्डवत प्रणाम और सेवा सहित ध्यानपूर्वक प्रश्न पूछो तब वे तत्वदर्शी तुम्हे ज्ञान का उपदेश देंगे।

यत् ज्ञात्वा न पुनः मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतानि अशेषेण द्रक्ष्यसि आत्मनि अथो मयि।।

ऐसे शुद्ध ज्ञान को जानकर फिर तुम्हे इस प्रकार मोह नही होगा और तुम सम्पूर्ण जीवों में तथा मुझमें एकरुपता देखोगे।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेन एव वृजिनं सम् तरिष्यसि।।

यदि तुम सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाले हो तब भी इस ज्ञान रुपी नाव से सहज में ही पाप–सागर से पार हो जाओगे।

यथा एधांसि समिद्धः अग्निः भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।

हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रुपी अग्नि सारे कर्मो को जलाकर भस्म कर देती है।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रम् इह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति।।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला और कुछ भी नही है। उस ज्ञान को योगसिद्ध व्यक्ति कुछ काल बाद स्वयं अनुभव करता है। अर्थात समता आदि योग से जिसका अंतःकरण शुद्ध हो गया है ऐसा व्यक्ति समय आने पर स्वयं उस ज्ञान को अपने भीतर अनुभव करता है।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम् अचिरेण अधिगच्छति।।

जो श्रद्धावान, जितेन्द्रिय और ज्ञान प्राप्त करने को तत्पर है ऐसा व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त करता है।

अज्ञः च अश्रद्दधानः च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

जो अज्ञानी है, श्रद्धारहित है और संशयवान है वह परमार्थ से विमुख होकर नष्ट हो जाता है उस व्यक्ति के लिये इस लोक अथवा परलोक में सुख है ही नहीं।

योगसंन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबन्धन्ति धनंजय।।

हे अर्जुन! समत्व बुद्धि रुपी योग द्वारा जिसने अपने सम्पूर्ण कर्म अर्पण कर दिये हैं, ज्ञान द्वारा जिसके सब संशय नष्ट हो गये हैं उस आत्मज्ञानी को कर्म नहीं बांधते हैं।

तस्मात् अज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिना आत्मनः।
छित्त्वा एनं संशयं योगम् आतिष्ठ उत्तिष्ठ भारत।।

अतः हे भारत! अज्ञान से जो भ्रम हृदय में उत्पन्न हुआ है उसे ज्ञान रुपी कृपाण से काट कर तथा योग में स्थित होकर युद्ध के लिये खड़े हो जाओ।

इति चतुर्थोऽध्यायः।